॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

सर्वसार उपनिषद

विषय सूची

॥अथ सर्वसारोपनिषत् ॥ 3
सर्वसार उपनिषद 4
शान्तिपाठ 14

॥ श्री हरि ॥

॥अथ सर्वसारोपनिषत् ॥

॥ हरिः ॐ ॥

समस्तवेदान्तसारसिद्धान्तार्थकलेवरम् ।
विकलेवरकैवल्यं रामचन्द्रपदं भजे ॥

सर्वसारं निरालम्बं रहस्यं वज्रसूचिकम् ।
तेजोनादध्यानविद्यायोगतत्त्वात्मबोधकम् ॥

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ १९॥

परमात्मा हम दोनों गुरु शिष्यों का साथ साथ पालन करे। हमारी रक्षा करें। हम साथ साथ अपने विद्याबल का वर्धन करें। हमारा अध्यान किया हुआ ज्ञान तेजस्वी हो। हम दोनों कभी परस्पर द्वेष न करें।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

भगवान् शांति स्वरुप हैं अत: वह मेरे अधिभौतिक, अधिदैविक और अध्यात्मिक तीनो प्रकार के विघ्नों को सर्वथा शान्त करें ।

॥ हरिः ॐ ॥

॥ श्री हरि ॥

॥ सर्वसारोपनिषत् ॥

सर्वसार उपनिषद

कथं बन्धः कथं मोक्षः का विद्या काऽविद्येति ।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयं च कथम् ।
अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमयकोशाः कथम् ।
कर्ता जीवः पञ्चवर्गः क्षेत्रज्ञः साक्षी कूटस्थोऽन्तर्यामी कथम् ।
प्रत्यगात्मा परात्मा माया चेति कथम् । ॥१॥

बन्धन क्या है? मुक्ति क्या है? विद्या और अविद्या किसको कहते हैं? जाग्रत् , स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय ये चार अवस्थाएँ क्या हैं? अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोशों का परिचय क्या है? कर्ता, जीव, पञ्चवर्ग, क्षेत्रज्ञ, साक्षी, कूटस्थ और अन्तर्यामी क्या है? प्रत्यगात्मा क्या है? परमात्मा क्या है और यह माया क्या है?॥१॥

आत्मेश्वरजीवः अनात्मनां देहादीनामात्मत्वेनाभिमन्यते
सोऽभिमान आत्मनो बन्धः । तन्निवृत्तिर्मोक्षः । ॥२॥

आत्मा ही ईश्वर और जीव स्वरूप है, वही अनात्मा शरीर में अहंभाव जाग्रत् कर लेता है ('मैं शरीर हूँ' ऐसा मानने लगता है), यही बन्धन है। शरीर के प्रति इस अहंभाव से मुक्त हो जाना ही मोक्ष है॥२॥

या तदभिमानं कारयति सा अविद्या । सोऽभिमानो यया
निवर्तते सा विद्या । ॥३॥

इस अहंभाव की जन्मदात्री अविद्या है, जिसके द्वारा अहंभाव समाप्त हो जाये, वही विद्या है॥३॥

मन आदिचतुर्दशकरणैः
पुष्कलैरादित्याद्यनुगृहीतैः शब्दादीन्विषयान्-
स्थूलान्यदोपलभते तदात्मनो जागरणम् ।
तद्वासनासहितैश्चतुर्दशकरणैः शब्दाद्यभावेऽपि
वासनामयाञ्छब्दादीन्यदोपलभते तदात्मनः स्वप्नम् ।
चतुर्दशकरणो परमाद्विशेषविज्ञानाभावाद्यदा
शब्दादीन्नोपलभते तदात्मनः सुषुप्तम् ।
अवस्थात्रयभावाभावसाक्षी स्वयंभावरहितं
नैरन्तर्यं चैतन्यं यदा तदा तुरीयं चैतन्यमित्युच्यते । ॥४॥

देवों की शक्ति द्वारा मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और दस इन्द्रियाँ-इन चौदह करणों द्वारा आत्मा जिस अवस्था में शब्द, स्पर्श, रूप आदि स्थूल विषयों को ग्रहण करती है, उसको आत्मा की जाग्रतावस्था कहते हैं। शब्द आदि स्थूल विषयों के न होने पर भी जाग्रत् स्थिति

के समय बची रह गई वासना के कारण मन आदि चतुर्दश करणों के द्वारा शब्दादि विषयों को जब जीव ग्रहण करता है, उस अवस्था को स्वप्नावस्था कहते हैं। इन इन्द्रियों के शान्त हो जाने पर जब विशेष ज्ञान नहीं रहता और इन्द्रियाँ शब्द आदि विषयों को ग्रहण नहीं करतीं, तब आत्मा की उस अवस्था को सुषुप्ति अवस्था कहते हैं। उपर्युक्त तीनों अवस्थाओं की उत्पत्ति और लय का ज्ञाता और स्वयं उद्भव और विनाश से सदैव परे रहने वाला जो नित्य साक्षी भाव में स्थित चैतन्य है, उसी को तुरीय चैतन्य कहते हैं, उसकी इस अवस्था का नाम ही तुरीयावस्था है॥४॥

अन्नकार्याणां कोशानां समूहोऽन्नमयः कोश उच्यते ।
प्राणादिचतुर्दशवायुभेदा अन्नमयकोशे यदा वर्तन्ते
तदा प्राणमयः कोश इत्युच्यते ।
एतत्कोशद्वयसंसक्तं मन आदि चतुर्दशकरणैरात्मा
शब्दादिविषयसङ्कल्पादीन्धर्मान्यदा करोति तदा मनोमयः
कोश इत्युच्यते । एतत्कोशत्रयसंसक्तं तद्गतविशेषज्ञो
यदा भासते तदा विज्ञानमयः कोश इत्युच्यते ।
एतत्कोशचतुष्टयं संसक्तं स्वकारणाज्ञाने
वटकणिकायामिव वृक्षो यदा वर्तते तदानन्दमयः कोश
इत्युच्यते । ॥५॥

अन्न से निर्मित होने वाले कोश समूह रूप शरीर को अन्नमय कोश कहते हैं। जब इस अन्नमय कोश रूप शरीर में प्राण आदि चौदह

वायु संचरित होते हैं, तब उसे प्राणमय कोश कहा जाता है। अन्नमये और प्राणमय कोशों के अन्दर रहने वाले मन आदि चतुर्दश करणों (इन्द्रियों) द्वारा आत्मा जब शब्दादि विषयों पर चिन्तन करता है, तब उसे मनोमय कोश कहते हैं। तीनों (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय) कोशों से संयुक्त होकर जब वह (आत्मा) बुद्धि द्वारा चिन्तन करता है, तब उसके बुद्धियुक्त स्वरूप को विज्ञानमय कोश कहते हैं। इन चार (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय) कोशों के साथ आत्मा जब वट वृक्ष के (मूलकारण) वृक्षबीज के समान अपने कारण स्वरूप को न जानता हुआ निवास करता है, तब उसके उस स्वरूप को आनन्दमय कोश कहते हैं॥५॥

सुखदुःखबुद्ध्या श्रेयोऽन्तः कर्ता यदा तदा
इष्टविषये बुद्धिः सुखबुद्धिरनिष्टविषये बुद्धिर्दुःखबुद्धिः ।
शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः सुखदुःखहेतवः ।
पुण्यपापकर्मानुसारी भूत्वा प्राप्तशरीरसंयोग-
मप्राप्तशरीरसंयोगमिव कुर्वाणो यदा दृश्यते
तदोपहितजीव इत्युच्यते । ॥६॥

सुख की भावना से मन में वस्तु विशेष के प्रति जो रुचि उत्पन्न होती है, वह सुख बुद्धि कहलाती है और वस्तु विशेष के प्रति जो अरुचि उत्पन्न होती है, वह दु:ख बुद्धि कहलाती है। सुख प्राप्त करने और दुःख का परित्याग करने के लिए जीव जिन क्रियाओं को करता है, उन्हीं के कारण वह कर्ता कहलाता है। सुख-दु:ख के कारणभूत ये पञ्च विषय-शब्द, स्पर्श, रूप,रस,गन्ध हैं। जब पुण्य-पाप का

अनुसरण करता हुआ आत्मा इस मिले हुए शरीर को अप्राप्त की तरह मानता है,तब वह उपाधियुक्त जीव कहलाता है॥६॥

मन आदिश्च प्राणादिश्चेच्छादिश्च सत्त्वादिश्च पुण्यादिश्चैते
पञ्चवर्गा इत्येतेषां पञ्चवर्गाणां धर्मीभूतात्मा
ज्ञानादृते न विनश्यत्यात्मसन्निधौ नित्यत्वेन
प्रतीयमान आत्मोपाधिर्यस्तल्लिङ्गशरीरं
हृद्ग्रन्थिरित्युच्यते ॥७॥

मन आदि (अन्तःचतुष्टय), प्राण आदि (चौदह प्राण), इच्छा आदि (इच्छा-द्वेष), सत्त्व आदि (सतु, रज, तम) और पुण्य आदि (पाप-पुण्य) इन पाँचों को पञ्च वर्ग कहा जाता है। इनका धर्मी (धारक) बनकर जीवात्मा ज्ञानरहित होकर इनसे मुक्ति नहीं पा सकता। मन आदि जो सूक्ष्म तत्त्व हैं, इनकी . उपाधि सदैव आत्मा के साथ लगी प्रतीत होती है, जिसे लिङ्ग शरीर कहते हैं, वही हृदय की ग्रन्थि है॥७॥

तत्र यत्प्रकाशते चैतन्यं स क्षेत्रज्ञ इत्युच्यते । ॥८॥

उस लिङ्ग शरीर में जो चैतन्य है, उसी को 'क्षेत्रज्ञ' कहते हैं॥८॥

ज्ञातृज्ञानज्ञेयानामाविर्भाव-
तिरोभावज्ञाता स्वयमाविर्भावतिरोभावरहितः
स्वयंज्योतिः साक्षीत्युच्यते । ॥९॥

ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय के उद्भव और विलय को जानकर भी जो स्वयं उत्पत्ति और विनाश से परे है, वह आत्मा साक्षी कहलाता है॥९॥

ब्रह्मादिपिपीलिकापर्यन्तं सर्वप्राणिबुद्धिष्ववशिष्टत-
योपलभ्यमानः सर्वप्राणिबुद्धिस्थो यदा तदा कूटस्थ
इत्युच्यते । ॥१०॥

ब्रह्मा से लेकर पिपीलिका (चींटी) पर्यन्त समस्त जीवों की बुद्धि में वास करने वाला और स्थूल आदि शरीरों के विनष्ट हो जाने पर भी जो अवशिष्ट दिखाई देता है, उसे 'कूटस्थ' कहते हैं॥१०॥

कूटस्थोपहितभेदानां स्वरूपलाभहेतुर्भूत्वा
मणिगणे सूत्रमिव सर्वक्षेत्रेष्वनुस्यूतत्वेन यदा काश्यते
आत्मा तदान्तर्यामीत्युच्यते । ॥११॥

कूटस्थ आदि उपाधियों के भेदों में स्वरूप (प्राप्त करने के) लाभ के निमित्त जो आत्मा समस्त शरीरों में, माला (के मनकों) में धागे की तरह पिरोया हुआ प्रतीत होता है,उसे अन्तर्यामी कहते हैं॥११॥

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म । सत्यमविनाशि । अविनाशि
नाम देशकालवस्तुनिमित्तेषु विनश्यत्सु यन्न विनश्यति
तदविनाशि । ज्ञानं नामोत्पत्तिविनाशरहितं नैरन्तर्यं
चैतन्यं ज्ञानमुच्यते । अनन्तं नाम मृद्विकारेषु

मृदिव स्वर्णविकारेषु स्वर्णमिव तन्तुविकारेषु
तन्तुरिवाव्यक्तादिसृष्टिप्रपञ्चेषु पूर्णं व्यापकं
चैतन्यमनन्तमित्युच्यते । ॥१२॥

आनन्दं नाम सुखचैतन्यस्वरूपोऽपरिमितानन्द-
समुद्रोऽवशिष्टसुखस्वरूपश्चानन्द इत्युच्यते ।
एतद्वस्तुचतुष्टयं यस्य लक्षणं देशकाल-
वस्तुनिमित्तेश्वव्यभिचारी तत्पदार्थः परमात्मेत्युच्यते । ॥१३॥

सत्य, ज्ञान और अनन्त आनन्द स्वरूप तथा समस्त उपाधियों से रहित, कटक (कड़ा), मुकुट आदि उपाधियों से विहीन एक मात्र स्वर्ण के समान ज्ञानघन और चैतन्य स्वरूप आत्मा जब भासित (अनुभूत) होता है, उस समय उसे 'त्वं' नाम से सम्बोधित किया जाता है। ब्रह्म को सत्य, अनन्त और ज्ञानस्वरूप कहा गया है। अक्षिनाशी ही सत्य है। देश, काल और वस्तु आदि जो निमित्त हैं, उनके विनष्ट हो जाने पर भी जिसका विनाश नहीं होता, वही अविनाशी तत्त्व है। उद्भव और विनाश से परे नित्य चैतन्य तत्त्व को 'ज्ञान' कहा जाता है। मृत्तिका से निर्मित पात्रों- वस्तुओं में मृत्तिका के समान, स्वर्ण निर्मित आभूषणों में स्वर्णवत्, सूत निर्मित वस्त्रों में सूत्रवत् विद्यमान वह चैतन्य सत्ता जो समस्त सृष्टि में पूर्णतः व्याप्त है,उसे 'अनन्त' कहते हैं। जो सुख स्वरूप, चैतन्य स्वरूप, अपरिमित आनन्द का सागर है और अवशिष्ट सुख का स्वरूप है, उसे 'आनन्द' कहते हैं। ये चार (सत्य, ज्ञान, अनन्त और आनन्द) वस्तु बोधक पद जिसके लक्षण हैं तथा देश, काल, वस्तु आदि निमित्तों के रहते भी जिसमें कोई परिवर्तन

नहीं होता, उसको 'तत् ' पदार्थ अथवा परमात्मा' ऐसा कहते हैं॥ १२-१३॥

त्वंपदार्थादौपाधिकात्तत्पदार्थादौपाधिक-
भेदाद्विलक्षणमाकाशवत्सूक्ष्मं केवलसत्ता-
मात्रस्वभावं परं ब्रह्मेत्युच्यते । माया नाम
अनादिरन्तवती प्रमाणाप्रमाणसाधारणा न सती
नासती न सदसती स्वयमधिका विकाररहिता निरूप्यमाणा
सतीतरलक्षणशून्या सा मायेत्युच्यते । अज्ञानं
तुच्छाप्यसती कालत्रयेऽपि पामराणां वास्तवी च
सत्त्वबुद्धिर्लौकिकानामिदमित्थमित्यनिर्वचनीया वक्तुं न शक्यते ।
॥१४-१५॥

'तत्' और 'त्वं' ये दोनों ही पदार्थ उपाधियुक्त भेदों से भिन्न, अन्तरिक्ष की तरह सूक्ष्म, केवल सत्तामात्र स्वभाव वाला होने से परब्रह्म कहा जाता हैं॥ जो अनादि है, विनष्टप्राय है, जो न सत् है और न असत् । जो स्वयं ही सबसे अधिक विकाररहित प्रतीत होती है तथा अन्य लक्षणों से शून्य है, उस शक्ति को 'माया' कहते हैं। उसका वर्णन किसी अन्य प्रकार से नहीं किया जा सकता। यह माया शक्ति तुच्छ, अज्ञान स्वरूप और मिथ्या है, परन्तु पामरों (मूढ़ पुरुषों) को यह त्रिकाल में (तीनों कालों में सदैव) वास्तविक प्रतीत होती है, इसीलिए सुनिश्चित रूप से 'यह इस प्रकार की है', ऐसा इसका रूप समझना-बतलाना सम्भव नहीं है॥१४-१५॥

नाहं भवाम्यहं देवो नेन्द्रियाणि दशैव तु ।

न बुद्धिर्न मनः शश्वन्नाहङ्कारस्तथैव च ॥ १६॥

अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो बुद्ध्यादीनां हि सर्वदा ।
साक्ष्यहं सर्वदा नित्यश्चिन्मात्रोऽहं न संशयः ॥ १७॥

नाहं कर्ता नैव भोक्ता प्रकृतेः साक्षिरूपकः ।
मत्सान्निध्यात्प्रवर्तन्ते देहाद्या अजडा इव ॥ १८॥

स्थाणुर्नित्यः सदानन्दः शुद्धो ज्ञानमयोऽमलः ।
आत्माहं सर्वभूतानां विभुः साक्षी न संशयः ॥ १९॥

ब्रह्मैवाहं सर्ववेदान्तवेद्यं नाहं वेद्यं व्योमवातादिरूपम् ।
रूपं नाहं नाम नाहं न कर्म ब्रह्मैवाहं सच्चिदानन्दरूपम् ॥२०॥

मेरा कभी जन्म नहीं होता, मैं दस इन्द्रियाँ भी नहीं हूँ। मैं मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार भी नहीं हूँ। मैं सदा प्राण और मन के बिना ही शुद्ध स्वरूप हूँ। मैं सदैव बुद्धि के बिना ही साक्षी हूँ और सदैव चित्त (चैतन्य) स्वरूप में अवस्थित हैं। इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है। मैं कर्ता और भोक्ता भी नहीं हैं, वरन् केवल प्रकृति का साक्षी हूँ तथा मेरी समीपता के कारण देह आदि सचेतन की तरह व्यवहार करते हैं। मैं स्थिर, नित्य, आनन्द और ज्ञान के विशुद्ध स्वरूप में स्थित निर्मल आत्मा हूँ। समस्त प्राणियों के अन्दर मैं साक्षी रूप से संव्याप्त हूँ, इसमें कोई संशय नहीं है॥ समस्त वेदान्त के द्वारा जिसे जाना जाता है, मैं वही ब्रह्म हूँ। मैं आकाश, वायु आदि नामों से जाना

जाने वाला नहीं हूँ। मैं नाम, रूप और कर्म भी नहीं हैं, बल्कि मात्र सत्-चित्-आनन्द स्वरूप ब्रह्म हूँ॥१६-२०॥

नाहं देहो जन्ममृत्यु कुतो मे
नाहं प्राणः क्षुत्पिपासे कुतो मे ।
नाहं चेतः शोकमोहौ कुतो मे
नाहं कर्ता बन्धमोक्षौ कुतो म इत्युपनिषत् ॥ ॥२१॥

मैं शरीर नहीं हैं, तो फिर मेरा जन्म-मरण कैसे हो सकता है? मैं प्राण नहीं हैं, तो मुझे क्षुधापिपासा क्यों सताये? मैं मन नहीं हैं, तो मुझे शोक-मोहादि क्यों हो? मैं कर्ता भी नहीं हूँ, फिर मेरी मुक्ति और बन्धनं किस तरह हो? इस प्रकार इस (सर्वसारोपनिषद्) का यही रहस्य है॥२१॥

॥हरिः ॐ ॥

शान्तिपाठ

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ १९॥

परमात्मा हम दोनों गुरु शिष्यों का साथ साथ पालन करे। हमारी रक्षा करें। हम साथ साथ अपने विद्याबल का वर्धन करें। हमारा अध्यान किया हुआ ज्ञान तेजस्वी हो। हम दोनों कभी परस्पर द्वेष न करें।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

भगवान् शांति स्वरुप हैं अत: वह मेरे अधिभौतिक, अधिदैविक और अध्यात्मिक तीनो प्रकार के विघ्नों को सर्वथा शान्त करें ।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

॥ इति सर्वसारोपनिषत्समाप्ता ॥

॥ सर्वसार उपनिषद समात ॥

संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय: ॥